आस्तिक कौन? नास्तिक कौन?

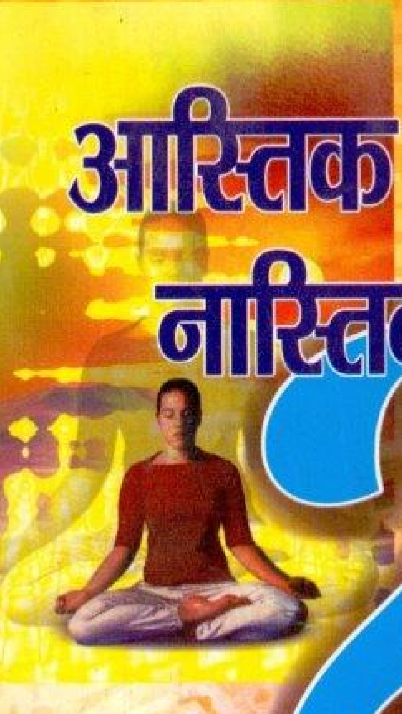

पं. श्रीराम शर्मा आचार्य

आस्तिक कौन ?

नास्तिक कौन ?

लेखक

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

प्रकाशक

युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट

गायत्री तपोभूमि, मथुरा-२८१००३

फोन : (०५६५) २५३०१२८, २५३०३९९

मो. : ०९९२७०८६२८९, ०९९२७०८६२८७

फैक्स : २५३०२००

पुनरावृत्ति सन् २०११ मूल्य : ६.०० रुपये

प्रकाशक
युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट
गायत्री तपोभूमि
मथुरा (उ. प्र.)

लेखक
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

पुनरावृत्ति सन् २०११

मुद्रक
युग निर्माण योजना प्रेस
गायत्री तपोभूमि, मथुरा

आस्तिक कौन ? नास्तिक कौन ?

आस्तिकता का सच्चा स्वरूप

'ईश्वर है'—केवल इतना मान लेना मात्र ही आस्तिकता नहीं है। ईश्वर की सत्ता में विश्वास कर लेना भी आस्तिकता नहीं है, क्योंकि आस्तिकता विश्वास नहीं, अपितु एक अनुभूति है।

'ईश्वर है' यह बौद्धिक विश्वास है। ईश्वर को अपने हृदय में अनुभव करना, उसकी सत्ता को संपूर्ण सचराचर जगत में ओत-प्रोत देखना और उसकी अनुभूति से रोमांचित हो उठना ही सच्ची आस्तिकता है। आस्तिकता की अनुभूति ईश्वर की समीपता का अनुभव कराती है। आस्तिक व्यक्ति जगत को ईश्वर में और ईश्वर को जगत में ओत-प्रोत देखता है। वह ईश्वर को अपने से और अपने को ईश्वर से भिन्न अनुभव नहीं करता। उसके लिए जड़-चेतनमय सारा संसार ईश्वर रूप ही होता है। वह ईश्वर के अतिरिक्त किसी भिन्न सत्ता अथवा पदार्थ का अस्तित्व ही नहीं मानता।

प्रायः जिन लोगों को धर्म करते देखा जाता है उन्हें आस्तिक मान लिया जाता है। यह बात सही है कि आस्तिकता से धर्म-प्रवृत्ति का जागरण होता है। किंतु यह आवश्यक नहीं कि जो धर्म-कर्म करता हो वह आस्तिक भी हो। अनेक लोग प्रदर्शन के लिए भी धर्म-कार्य किया करते हैं। वे ईश्वर के प्रति अपना विश्वास, श्रद्धा तथा भक्ति को व्यक्त करते हैं। किंतु उनकी वह अभिव्यक्ति मिथ्या एवं प्रदर्शनभर ही हुआ करती है—ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार

लोग आवश्यकता, परिस्थिति, शिष्टाचार अथवा स्वार्थवश किसी के प्रति भाव न होने पर भी स्नेह, प्रेम, श्रद्धा अथवा भक्ति दिखाया करते हैं।

आस्तिकता से उत्पन्न धर्म में प्रदर्शन संभव नहीं। जो अणु-अणु में ईश्वर की उपस्थिति अनुभव करता है, उससे प्रेम रखता है वह मिथ्या प्रदर्शन का साहस कर ही नहीं सकता। जो उस प्रेमास्पद सर्वशक्तिमान को ही अंदर-बाहर सब जगह विद्यमान देखता है, वह उसके लिए किसी अप्रिय व्यवहार को किस प्रकार कर सकता है! वह उसके अप्रसन्न हो जाने का भय मानेगा। सच्चे धार्मिक जिनकी धार्मिकता का जन्म आस्तिकता से होता है स्वतः धर्माचरण में प्रवृत्त रहते हैं, उन्हें प्रयत्नपूर्वक वैसा करने की आवश्यकता नहीं होती। उनका प्रत्येक व्यवहार धर्मसम्मत एवं उसी से प्रेरित होता है। जीव मात्र को आत्मवत् तथा संपूर्ण जगत को परमात्मा का रूप मानने वाले धर्मात्मा से असंगत, अनुचित अथवा अकरणीय कार्य होना संभव नहीं।

प्रदर्शनकारी धर्मध्वजियों में आस्तिकता का विश्वास करना एक बड़ा भ्रम है। लोग इसी भ्रम के वशीभूत होकर उनकी पूजा-प्रतिष्ठा तथा आदर-सत्कार करने लगते हैं। वे उसे भगवान का बड़ा भक्त समझते हैं। अपनी अंधश्रद्धा के कारण लोग धर्मध्वजियों के उन कृत्यों को नहीं देखते जो किसी भी धार्मिक के लिए सर्वथा अनुचित होते हैं। प्रातःकाल दो-दो घंटे घंटी बजाने वाले, बड़ी-बड़ी प्रार्थनाएँ करने और आसन-प्राणायाम करने वाले अपने व्यावहारिक जीवन में निकृष्ट स्वार्थों एवं संकीर्णताओं का आश्रय लिया करते हैं। तनिक-तनिक बात में झूठ बोलना, एक पैसे के लिए किसी का बड़े से बड़ा अहित कर देना, सहसामाजिकों के साथ असहयोग करना, उनसे स्पर्द्धा मानना और उनको प्रति ईर्ष्या-

द्वेष मानना, हर समय लोभ, क्रोध, मोह से प्रेरित रहना उनका दैनिक जीवन का अंग बन जाता है। ऐसे आदमी भी यदि थोड़ी देर पूजा-पाठ का प्रदर्शन कर देने पर धार्मिक अथवा आस्तिक माने जा सकते हैं तो फिर यह मान लेने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए कि पूरा संसार आस्तिक है और अपनी-अपनी तरह से धर्मात्मा भी।

एक क्षण भी धर्म-कर्म का दिखावा न करने वाला यदि मनुष्यों का ठीक-ठीक मूल्यांकन करता है, समाज के प्रति अपने दायित्व का पालन करता है, सबको ईश्वर का रूप मानकर ईर्ष्या-द्वेष नहीं रखता, जिसका हृदय प्रेम, सहानुभूति तथा संवेदना से भरा है, वही सच्चा धार्मिक तथा आस्तिक है। किंतु खेद है कि लोग धार्मिकता-आस्तिकता के मूल तत्त्व न देखकर प्रदर्शन के प्रवाह में बह जाते हैं।

ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार करना, यह मानना कि ईश्वर कोई है—आस्तिकता नहीं है। यह आस्तिकता की ओर उन्मुख होने की उपक्रम विधि है। उसकी ओर जाने वाले पथ पर चरण भर रखना है, चलना नहीं। इस मान्यता से जिज्ञासा का जन्म होता है जिससे मनुष्य आस्तिकता की ओर डरते-डरते ही गतिशील होता है। फिर ज्यों-ज्यों जिज्ञासा बढ़ती जाती है, गति तीव्र होती जाती है और मनुष्य ईश्वर के सान्निध्य की अनुभूति करना प्रारंभ कर देता है।

प्रारंभ में ईश्वर की सत्ता अथवा अस्तित्व का विश्वास उसकी ऐश्वर्य महिमा के प्रभाव से ही होता है। जब मनुष्य इस अनंत एवं अनादि जगत पर दृष्टि डालता है। जीवों के जन्म-मरण की अनबूझ लीला देखता है। कण मात्र बीज से वटवृक्ष का उदयन देखता, जन्म, विकास, जरा एवं मृत्यु पर विचार करता, अनंताकाश

में लटके तथा चक्कर लगाते ग्रह-नक्षत्रों का आधार ढूँढ़ता है, तब उसका मन मान उठता है कि ईश्वर नाम की कोई सत्ता है अवश्य, जो कि इस समस्त सृष्टि का पालन-संचालन करती है।

बाह्य जगत के अतिरिक्त जब वह अंतर्जगत में विवेक, बुद्धि, भावना तथा काम, क्रोध, मोह, लोभ आदि विकारों एवं प्रेम, सौहार्द्र, संवेदना आदिक गुणों का उदय-अस्त एक वैज्ञानिक विधि से होना अनुभव करता है, तब उसे हेतुभूत किसी अदृश्य कर्त्ता में विश्वास किए बिना चैन नहीं पड़ता। परमात्मा की ऐश्वर्य महिमा से उद्भूत विश्वास आस्तिकता नहीं बल्कि आस्तिकता का प्रारंभ भर है, जो जिज्ञासा का आधार पाकर कालांतर में चिंतन करने, आस्तिकता की अनुभूति विकसित करने में लगता है।

ईश्वर की ऐश्वर्य-महिमा परिपक्व होकर जब आनंद बनकर हृदय में उतरने लगती है, तब मनुष्य में यथार्थ आस्तिकता का आविर्भाव प्रारंभ हो जाता है। उसके लिए संसार का अणु-अणु आनंद का स्रोत बन जाता है। जिस पर भी उसकी दृष्टि पड़ती है उसी में उसे परमात्मा के दर्शन होने लगते हैं। उसका ईश्वर संबंधी बौद्धिक विश्वास आत्मिक अनुभूति में बदल जाता है। संसार के सारे सुख-दुःख उसे आनंदरूप बन जाते हैं। सच्ची आस्तिकता की उपलब्धि होते ही मनुष्य और ईश्वर के बीच पड़ा मोह, अज्ञान अथवा अंधकार का आवरण हट जाता है और अंदर-बाहर सब जगह ईश्वर के दर्शन करने लगता है। उसकी निष्ठा, उसकी श्रद्धा अपने अतिरेक में सारे तर्कों, संदेहों तथा अनिश्चयों को अपने प्रवाह में निमग्न कर लेती है।

आस्तिकता की यथार्थ अनुभूति मनुष्य में ईश्वरता का जागरण कर देती है। जिससे उसका सारा जीवन आध्यात्मिक भावों से

भरकर उच्च से उच्चतम की ओर उठता चला जाता है और शीघ्र ही '**सोऽहम्**' की स्थिति में पहुँच जाता है। मनुष्य का ध्यान जिस पर केंद्रित हो जाता है उसके निरंतर चिंतन से मनुष्य मन, वचन, कर्म से उसी का स्वरूप हो जाता है। आस्तिक भाव में एकनिष्ठ हो जाने से निरंतर ईश्वर का चिंतन करते और सभी ओर सबमें उसको ही देखते रहने से मनुष्य स्वयं ही ईश्वररूप हो जाता है।

सच्ची आस्तिकता में जहाँ एक प्रेरणा होती है, वहाँ एक आकर्षण भी होता है। आस्तिकता जहाँ मनुष्य को ईश्वर की ओर प्रेरित करती है वहाँ ईश्वरीय तत्त्व को भी मनुष्य की ओर आकृष्ट करती रहती है, जिससे शीघ्र ही मनुष्य तथा ईश्वर के बीच की दूरी समाप्त हो जाती है। आस्तिक भगवान के और भगवान आस्तिक के द्वार तक पहुँचने के लिए एक साथ चल पड़ते हैं।

आस्तिक मनुष्य का ध्यान हर घड़ी ईश्वर की ओर लगा रहता है। वह जीवन के सारे काम एक उसी के लिए ही किया करता है। उसी की ओर से उसी के लिए काम करने के कारण उनकी अच्छाई-बुराई का सारा दायित्व परमात्मा पर रहता है। अपने उत्तरदायित्व का ध्यान रखते हुए परमात्मा आस्तिक व्यक्ति को सदा ही असत् कर्मों से बचाकर सत्कर्मों की ओर चलाया करता है। वह पिता की तरह अभिभावक बनकर अपने पर निर्भर विश्वासी की हर अनिष्ट से रक्षा किया करता है। जग-प्रांगण में शिशु की तरह कर्मक्षेत्र में खेलते हुए अपने आस्तिक को हारने अथवा गिरने से ममतामयी माता की तरह बचाए रहता है। अपने अस्तित्व को परमात्मा में विलीन कर देने पर आस्तिक को जीवन की सफलता-असफलता की चिंता नहीं रहती। आस्तिक भाव में

उतर जाने का अर्थ है—परमात्मा की गोद में चला जाना, जहाँ केवल आनंद ही आनंद है।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास करना आस्तिकता की ओर उन्मुख होने का प्रारंभिक उपक्रम है और विश्वास से उत्पन्न जिज्ञासा का उसकी ओर गतिशील होना है। किंतु अशुद्ध भावना के कारण ईश्वर की ओर गतिशील होने वाले जिज्ञासु में एक भय, एक अनिश्चितता रहा करती है। जिज्ञासु की इस शंकाजन्य भय से रक्षा करना ईश्वर का ही दायित्व होता है, जिसे वह अवश्य ही अनुग्रहपूर्वक पूरा करता है। एक बार आस्तिकता के बीज साहसपूर्वक बो लेने के बाद मनुष्य को फिर किसी प्रकार का भय नहीं करना चाहिए। ईश्वर की ओर उसी में ध्यान लगाए, उन्मुख हो चलने पर ईश्वर स्वयं ही उसकी रक्षा किया करता है।

इतिहास में आस्तिक भावना के धनी संतों एवं भक्तों के असंख्यों उदाहरण पाए जाते हैं। प्रह्लाद, ध्रुव, मीरा, ईसा, मन्सूर आदि सब सच्ची आस्तिकता के जीते-जागते उदाहरण हैं। प्रह्लाद को पहाड़ पर से समुद्र में गिराया गया, आग में जलाया गया, लोहे के गरम खंभे में बाँधकर खड्ग से धमकाया गया। किंतु सच्चे आस्तिक भावों के कारण उसे उन सब भयावह परिस्थितियों में भी ईश्वर के ही दर्शन होते रहे, जिससे उसे कोई भय अनुभव न हुआ और उसने सारे अत्याचार को हँसते-हँसते सहा। सात वर्ष की अवस्था में विजन वन में शेर-चीतों और भालुओं के बीच तप करते हुए ध्रुव को कोई भय न लगा क्योंकि वह सच्चे आस्तिक थे और हिंस्र जीवों में भी उस परमात्मा के दर्शन कर रहे थे। मीरा को विष दिया, साँप को गोद में खिलाया, अडिग आस्तिकता के बल

पर काला साँप और काला विष उसके लिए भावना के अनुसार कृष्णरूप बन गए।

महात्मा मन्सूर और ईसामसीह ने आस्तिकता के बल पर ही शूली एवं क्रॉस पर लटक कर अपनी विश्वासपूर्ण मुस्कान को जीवित रखा। अपनी भावना की वास्तविकता के प्रभाव से उन्हें मृत्यु में भी जीवन और यातना में भी सुख का अनुभव होता रहा। ऐसा नहीं कि ईश्वरभक्त का शरीर किसी जादू का हो जाता है और उस पर आघात-प्रतिघातों का कोई प्रभाव नहीं होता है। ऐसी मान्यता मिथ्या है। प्रकृति अपना काम आस्तिक-नास्तिक सब पर समान रूप से करती है। घटनाओं की प्रतिक्रिया सब पर होती है। आस्तिक की विशेषता यह होती है कि वह उन कष्टों को अस्थिर समझता है और अपनी आदर्श भक्ति की रक्षा में जो संतोष मिलता है, इसकी तुलना में उन कष्टों को कोई महत्त्व नहीं देता। उसी प्रकार उनकी मानसिक शक्ति किसी भी परिस्थिति में नष्ट नहीं होने पाती।

आस्तिकता सच्ची भक्ति, सच्चा जीवन तथा सच्चा धर्म है, जिसे अपनाने से मनुष्य सुख-दुःख से परे होकर ईश्वरभक्त हो जाता है।

आस्तिकता का स्वरूप एवं प्रतिफल

आस्तिकता का अर्थ है—ईश्वर को मानना, मानने का अर्थ है—उसका अनुयायी होना और अनुयायी होने का तात्पर्य है— उसके विचार, निर्देश एवं आदर्श के अनुसार चलना। जो अपने को आस्तिक मानता है उसे यह भी मानना होगा कि वह परम प्रभू परमात्मा का अनुयायी है, उसका प्रतिनिधि है, उसका ऐसा प्रतिविंब है जिसको देखकर परमात्मा के स्वरूप तथा उसके गुण और

विशेषताओं का आभास पाया जा सकता है। परमात्मा में विश्वास करते हुए भी जो अपनी रीति-नीति उसके अनुरूप नहीं बनाता, पवित्र एवं उन्नत आत्मा नहीं बनाता वह धृष्ट विद्रोही तथा प्रच्छन्न नास्तिक है।

आस्तिकता स्वयं में ही एक उदात्त भावना है जिसे हर मनुष्य को अपने में विकसित करना ही चाहिए। उस परमात्मा को मानना, उसमें विश्वास करना, मनुष्य का परम-पावन कर्त्तव्य है जिसने चिदानंद का साधक यह समर्थ जीवन दिया है, एक से एक बढ़कर विशेषताएँ एवं क्षमताएँ दी हैं। साथ ही आस्तिकता एक बहुत बड़ा संबल भी है। आस्तिक भावना एक ऐसी अक्षय एवं अमोघ शक्ति है, जिसके सहारे मनुष्य भयानक से भयानक संकट सागर को सहज में ही पार कर जाता है। संसार में किसी समय भी कोई संकट आ सकता है और ऐसी भी स्थिति हो सकती है कि उस समय उससे बचने अथवा उबरने का कोई साधन न हो, संसार के सारे मित्रों, प्रेमियों, हितैषियों ने साथ छोड़ दिया हो, मनुष्य हर तरह से निरुपाय एवं असहाय बन गया हो। ऐसी भयानक स्थिति के अवसर पर उस निरुपाय एवं असहाय मनुष्य को आस्तिकता बहुत बड़ी सहायता बन जाती है। सब ओर से निराश होकर आस्तिक व्यक्ति ईश्वर का सहारा पकड़ लेता है, उसे ही अपना सबसे बड़ा सहायक एवं साथी समझ लेता है।

सर्वशक्तिमान परमात्मा का आँचल पकड़ते ही उसमें आत्मबल, आत्मविश्वास तथा उत्साहपूर्ण आशा का संचार होने लगता है। प्रकाश पाते ही अंधकार दूर हो जाता है। मनुष्य में संकट सहने अथवा उसको दूर कर सकने का साहस आ जाता है। ईश्वर में अखंड विश्वास रखने वाला सच्चा आस्तिक जीवन में कभी हानि

नहीं मानता। एक तो उसे यह विश्वास रहता है कि परमात्मा जो भी सुख-दुःख अनुग्रह किया करता है, उसमें मनुष्य का कल्याण ही निहित रहता है। इसलिए वह किसी हर्ष-उल्लास अथवा कष्ट-क्लेश से प्रभावित नहीं होता। दूसरे परमात्मा के प्रति आस्थावान होने से उसमें संकट सहने की शक्ति बनी रहती है। आस्तिक व्यक्ति परमात्मा का नाम लेकर संकट सहना क्या उसका नाम लेकर जहर पी जाते और शूली पर चढ़ जाते हैं। मीरा, प्रह्लाद, ईसा और मन्सूर ऐसे ही अडिग आस्तिक थे।

नास्तिक व्यक्ति के पास परमात्मा जैसा कोई अंतिम संबल अथवा शक्ति साहस का स्रोत नहीं होता। इसलिए वह निरुपाय अथवा निस्सहायता की दशा में संकट आ जाने पर बहुत अस्त-व्यस्त, अशांत एवं हताश हो जाता है। मानसिक संतुलन बनाए रहने के लिए उसके पास आस्तिक भाव जैसा कोई मानसिक आधार नहीं होता। इस अभाव से या तो वह अपने जीवन से भटक जाता है, कुमार्गगामी, सिद्धांत-हिंसक, आदर्शहीन होकर अपनी रक्षा करता है अथवा हार मानकर मैदान से हट जाता है, अथवा विक्षिप्त होकर आत्महत्या तक कर लेता है। संसार में मानसिक संकटों से घबराकर विक्षिप्त होने अथवा आत्महत्या करने वालों की यदि मनःपरीक्षा संभव हो सके और उनके विचारों तथा विश्वासों का पता लगाया जा सके तो निश्चय ही वे नास्तिक भावना वाले निकलेंगे।

आस्तिकता न केवल बाह्य संकटों में सहायक होने वाला संबल अथवा सहारा है, अपितु वह आंतरिक शत्रुओं काम, क्रोध, मद, लोभ आदि से भी रक्षा करती है। आस्तिक व्यक्ति अणु-अणु में परमात्मा का दर्शन करता है। उसका आत्मिक विश्वास रहता है कि जिस प्रकार मैं परमपिता परमात्मा का प्रिय पुत्र,

अनुयायी अथवा प्रतिविंब हूँ, उसी प्रकार प्रत्येक प्राणी भी है। इस विश्वास से पुलकित सच्चा आस्तिक प्रत्येक प्राणी को अपना भाई-बहन ही मानता और तदनुरूप प्रेम व्यवहार करता है। संपर्क में आने वाला जब प्रत्येक व्यक्ति अपना भाई-बहन ही है, तब सच्चा आस्तिक उनसे कठोर, क्रूर अथवा छल-कपटपूर्ण व्यवहार किस प्रकार कर सकता है? वह तो सबसे प्रेमपूर्ण निश्छल एवं युक्त व्यवहार ही करेगा। बंधुभाव से प्रेरित वह प्रत्येक की सहायता करने को हर समय तैयार रहेगा। वह किसी से स्वार्थ अथवा विश्वासघातपूर्ण व्यवहार कदापि नहीं करेगा। इस प्रकार सच्चा आस्तिक सहज ही में आत्मकल्याणकारी भव्य भावना का अधिकारी बन जाता है। काम, क्रोध अथवा लोभ ये शत्रु तभी आक्रमण करते हैं, जब मनुष्य का मन मलिन अथवा अरक्षित रहता है। आस्तिक व्यक्ति का ईश्वरीय विश्वास एवं परमात्मा की अनुभूति उसके हृदय को प्रसन्न एवं उज्ज्वल बनाने में सहायक होते हैं। उसकी भावनाओं में हर समय परमात्मा का निवास रहता है, जिससे उसके सुरिक्षत हृदय पर आसुरी वृत्तियाँ आक्रमण नहीं कर पातीं।

आस्तिक भावना से परमात्मा का सहारा पाकर मनुष्य नितांत निर्भय एवं निश्चिंत हो जाता है। उसके अखंड विश्वास के रूप में उसका साथी, मित्र, पिता तथा रक्षक हर समय उसके साथ रहता है। परमात्मारूपी पिता अथवा रक्षक साथ रहने पर भय अथवा चिंता किस बात की! संसार में ऐसा शक्तिशाली दुष्ट कौन हो सकता है जो सर्वशक्तिमान परमात्मा से रक्षित किसी आस्तिक का बाल भी बाँका कर सके। अखंड विश्वास के साथ जब कोई आस्तिक भूत-भविष्य वर्तमान के साथ अपना संपूर्ण जीवन परमात्मा अथवा उसके उद्देश्यों को सौंप देता है, तब उसे अपने जीवन के

प्रति किसी प्रकार की चिंता करने की आवश्यकता नहीं रहती। तब भी यदि वह चिंता करता है तो समझना चाहिए कि उसने अपना दायित्व पूरी तरह से सर्वशक्तिमान को सौंपा नहीं है, अथवा उसकी ईमानदारी में विश्वास नहीं करता कि धरोहर रूप में उसके पास सौंपे हुए जीवन की वह खोज-खबर लेता ही रहेगा। जो अपना सर्वस्व पूर्णरूप से परमात्मा को सौंपकर उद्देश्य में नियोजित हो जाता है, पूरी तरह से उसका बन जाता है, परमात्मा उसके जीवन का सारा दायित्व खुशी-खुशी अपने ऊपर ले लेता है और कभी भी विश्वासघात नहीं करता। आत्मसमर्पण में कमी अथवा दुरभिसंधि होने पर ही उसकी उपेक्षा बरती जा सकती है अन्यथा अनुभूति से परमात्मा में समाहित हो जाने पर किसी प्रकार का भय अथवा चिंता करने की आवश्यकता नहीं रहती। निश्चिंतता एवं निर्भयता में कितना अनिर्वचनीय सुख है, इसको एक सच्चा आस्तिक ही अनुभव कर सकता है।

असंदिग्ध आस्तिकता ईश्वर के साथ भावनात्मक सत्संग है। जब साधारण सज्जनों तथा सत्पुरुषों का संग असुर को देवता बना देता है, तब ईश्वर जैसी परिपूर्ण एवं सर्वगुणसंपन्न सत्ता का संग मनुष्य को क्या बना देगा इसकी प्रसन्न कल्पना उसका संग करके ही अनुभूत की जा सकती है और कहीं नहीं जा सकती है।

मनोवैज्ञानिक तथ्य के अनुसार जो जिसके संसर्ग में रहता है वह उसी का अनुरूप एवं अनुभाव हो जाता है। ऐसा तो तब हो जाता है जब मनुष्य बाह्य रूप में किसी के संपर्क में आता है। भावनाओं का समावेश होने पर तो यह अनुरूपता और भी अधिक गहरी होकर तद्रूपता में बदल जाती है। जब साधारण लौकिक व्यक्तियों का संसर्ग इस प्रकार प्रतिफलित होता है, तब उन सर्व एवं संपूर्ण श्रेय तथा श्रीमंत सर्वशक्तिमान के संपर्क में आकर, सो

भी भावनाभूमि के स्तर पर आकर मनुष्य किस अनिर्वचनीय आत्मकल्प की दिशा में गतिमान हो उठेगा, इसे उस सौभाग्यपूर्ण स्थिति में पहुँचे बिना किस प्रकार बताया जा सकता है? केवल इतना ही कहा जा सकता कि भृंगी एवं कीट की तरह मनुष्य ईश्वररूप ही हो जाएगा। इस कल्पनातीत एवं अंतिम पदवी की प्रदायिनी आस्तिकता को कौन बुद्धिमान अपने अंतर एवं अणु-अणु में ओत-प्रोत करने का प्रयत्न नहीं करेगा?

आस्तिकता सदाचार की जननी है। जो आस्तिक होगा, जो सबमें और सब जगह भगवान की उपस्थिति देखेगा, वह कोई दुराचार करने का साहस ही न करेगा। सदा-सर्वदा ऐसे ही कार्य करने और भावनाएँ रखने का प्रयत्न करेगा, जो सच्चे आस्तिक-ईश्वर के अनुयायी के अनुरूप हों। ईश्वरीय निर्देश एवं आदर्श सत्यं, शिवं, सुंदरम् के अतिरिक्त कुछ हो ही नहीं सकता। प्रेम, सहानुभूति, सहयोग, सत्य तथा सेवाभाव आस्तिक के विशेष गुण हैं। चोरी, मक्कारी, छल-कपट, ईर्ष्या-द्वेष, लोभ, मोह, काम आदि की दूषित प्रवृत्तियों से आस्तिक व्यक्ति का कोई संबंध नहीं रहता। आस्तिकता द्वारा ईश्वर से भावनात्मक संपर्क रखने वाला तो उसके अनुरूप ही अपने जीवन को उन्नत एवं उत्कृष्ट बनाने का प्रयत्न करेगा। आज संसार जिस शांति, व्यवस्था तथा सहयोग भावना की आवश्यकता अनुभव कर रहा है, वह आस्तिकता द्वारा सहज ही प्राप्त हो सकती है।

यदि संसार का प्रत्येक व्यक्ति पूर्ण रूप से आस्तिक होकर ईश्वरीय आदर्श पर चलने लगे तो न तो कोई किसी को सताए और न प्रवंचित करने का प्रयत्न करे। हर कोई अपनी सीमाओं में संतुष्ट होकर शांतिपूर्वक जीवनयापन करे। आज संसार में फैला हुआ सारा अनाचार इसी कारण है कि लोग केवल अपने स्वार्थ को

देखते हैं, किसी दूसरे की सुख-सुविधा अथवा अधिकार सीमा का ध्यान नहीं रखते। यदि आज आस्तिकता का व्यापक प्रचार हो जाए, लोग ईश्वर को सच्ची भावना से जानने, मानने और उससे डरने लगें तो कल ही सारे अपराधों का अंत हो जाए और चिरवांछित रामराज्य साकार हो उठे।

जप-तप पूजा-पाठ कर लेने अथवा किसी देव-प्रतिमा के सम्मुख सिर नवा देने मात्र से ही कोई आस्तिक नहीं हो जाता। आस्तिकता का अर्थ है—अपनी भावनाओं एवं क्रियाओं को उत्कृष्ट बनाना। ईश्वर में विश्वास करता हुआ और अपने को आस्तिक घोषित करता हुआ भी जो व्यक्ति सांसारिक तृष्णा-वासना का दास बना हुआ है, वह आस्तिक नहीं, आडंबरी है। किसी प्रकार भी आस्तिक मानकर उसका आदर नहीं किया जा सकता। आस्तिकता का अर्थ है—प्राणीमात्र में परमात्मा की झाँकी देखना और तदनुसार ही प्रत्येक का आदर करना, उसके साथ उदारता, दया और प्रेम का व्यवहार करना ही आस्तिकजनों के श्रेष्ठ लक्षण हैं।

आस्तिक भावना भक्ति रूप में परिपक्व होकर मनुष्य को कृतार्थ कर देती है। अपने को आस्तिक कहते हुए भी जिसमें भगवद्भक्ति का अभाव है, वह झूठा है, उसकी आस्तिकता अविश्वसनीय है। आस्तिकता के माध्यम से जिसके हृदय में भक्तिभावना का उदय हो जाता है, आनंदमग्न होकर उसका जीवन सफल हो जाता है। भक्ति का उदय होते ही मनुष्य में सुख-शांति, संतोष आदि के ईश्वरीय गुण फूट पड़ते हैं। भक्त के पास अपने प्रियतम परमात्मा के प्रति आंतरिक दुःख, क्षोभ, ईर्ष्या-द्वेष का कोई कारण नहीं रहता। भक्त का दृष्टिकोण उदार तथा व्यापक हो जाता है। उसे संसार में प्रत्येक प्राणी से प्रेम तथा बंधुत्व अनुभव होता है। जन-जन उसका तथा वह जन-जन का होकर लघु से

विराट बन जाता है। आठों याम उसका ध्यान प्रभु में ही लगा रहता है। संसार की कोई भी बाधा-व्यथा उसे सता नहीं पाती। वह इसी शरीर में जीवनमुक्त होकर चिदानंद का अधिकारी बन जाता है। यह है आस्तिकता की परिपक्वता का परिणाम। तब भला कौन ऐसा होगा जो भगवान से सान्निध्य, संसर्ग तथा उसकी भक्ति पाकर कृतार्थ होने के लिए सच्चा आस्तिक बनकर अपना जीवन धन्य न करना चाहेगा।

आस्तिकता से विश्व शक्ति का अवतरण

विश्व में स्थायी शांति की स्थापना जिन आधारों पर संभव है उनमें आस्तिकता सर्वप्रधान है। ईश्वर के अस्तित्व पर, उनकी सर्वव्यापकता और न्यायशीलता पर विश्वास हुए बिना मनुष्य के लिए यह कठिन है कि वह प्रलोभनों के समय, आपत्तियों के समय भी अपने कर्त्तव्य धर्म से विचलित न हो। सामाजिक एवं राजकीय प्रतिबंध एक सीमा तक जनसाधारण को कुमार्गगामी होने से बचा सकते हैं। वे अधिक से अधिक इतना कर सकते हैं कि किसी व्यक्ति के दुष्कर्म कर लेने के पश्चात उसकी भर्त्सना या दंड की व्यवस्था करें। पर यह तो बहुत पीछे की बात हुई। कुकर्म का प्रारंभ कुविचारों से ही हो जाता है। मन में कुविचार उठते हैं तो मस्तिष्क उसके अनुरूप अनेक योजनाएँ बनाने लगता है और उन योजनाओं में से छोटे-बड़े रूप में कई फलित भी होती रहती हैं। पकड़ में तो कोई एकाध ही आती है और पकड़े जाने पर भी दंड का भागीदार कभी-कभी होना पड़ता है अन्यथा लोग अपनी चतुरता और सफाई के बल पर छूट भी जाते हैं।

कुकर्मों के कारण ही इस संसार में सारी अशांति है। परस्पर जो राग-द्वेष और छीना-झपटी की अनीतिपूर्ण प्रक्रिया आज चल

रही है उसी के फलस्वरूप विविधविध के संघर्ष और क्लेश दृष्टिगोचर होते हैं। दैवी विपत्तियाँ भी हमारे पूर्वसंचित दुष्कर्मों के फलस्वरूप ही आती हैं। संसार में जितना भी कष्ट है वह किसी न किसी कुकर्म का फल है। आक्रमणकारी एवं अपहरणकर्त्ता का कुकर्म उसके लिए तो दुःखदायक होता ही है पर पहले दूसरे निर्दोषों को भी अपनी चपेट में ले लेता है। संसार में जितने ही कुकर्म पनपेंगे उतने ही दुःख भी बढ़ते रहेंगे। इसलिए यदि हमें शांति की स्थापना करनी है तो कुकर्मों को हटाना पड़ेगा। यह कुकर्म कैसे घटें? इस पर विचार करते हुए यह स्पष्ट हो जाता है कि कुविचार ही कुकर्मों के उत्पादक हैं। मस्तिष्क में घूमती रहने वाली अधर्ममूलक विचारधारा ही अवसर पाकर कुकर्म का रूप धारण करती है। पानी ही जमकर बरफ बनेगा। यदि हवा में पानी का अंश न हो तो बरफ कैसे गिरेगी? हवा में रहने वाला पानी अदृश्य और गिरने वाली बरफ दृश्य है, इसी प्रकार कुविचारों को सूक्ष्म अदृश्य एवं कुकर्म को स्थूल दृश्य पाप कहा जा सकता है। कुकर्मों को मिटाने के लिए कुविचारों पर प्रहार करना आवश्यक है।

कुविचारों में अनैतिक बातों का समावेश रहता है। अनैतिकता में एक आकर्षण है। जुआ, चोरी, लूट, व्यभिचार, बेईमानी आदि का परिणाम पीछे कुछ भी हो, तत्काल इनमें बहुत लाभ एवं बहुत आकर्षण दिखाई पड़ता है। इस लाभ एवं आकर्षण को नियंत्रित रखने का एकमात्र उपाय यदि हो सकता है तो वह ईश्वरीय न्याय का भय ही है। पाप को छिपाए रहना और राजदंड से बचे रहना आज की दुनिया में कुछ बहुत मुश्किल नहीं है। इसलिए मनुष्य सोचता है कि जब पाप के प्रतिफल से बचा जा सकता है तो फिर उसके लाभ और लोभ को क्यों छोड़ा जाए? आज

यही विचारधारा दुष्कर्मों को बढ़ावा दे रही है और इसी कारण हमारे मनों में कुविचारों की घटाएँ स्वच्छंद होकर विचरण करती रहती हैं।

कुविचारों पर अंकुश रखना किसी आंतरिक एवं भावनात्मक आधार पर ही संभव है। ईश्वर की सर्वज्ञता एवं निष्पक्ष न्यायशीलता की बात जब तक मन में न जमेगी, तब तक और किसी आधार पर मानसिक दुर्भावनाओं को रोका न जा सकेगा। कर्मफल, स्वर्ग-नरक, परलोक, पुनर्जन्म पर जिसका विश्वास है, वही कुमार्ग पर पैर बढ़ाते हुए हिचकेगा। जिसका अंत:करण कुमार्ग पर चलने से रोकता है, केवल वही कुकर्मों से बच सकता है। आंतरिक अंकुशही सच्चा अंकुश हो सकता है। सत्कर्म का कोई तात्कालिक प्रत्यक्ष लाभ न मिले, या उस मार्ग में कष्ट उठाना पड़े तो भी आस्तिक विचार का आदमी यह सोचकर संतोष कर सकता है कि सर्वज्ञ ईश्वर की न्यायशीलता निश्चित है तो आज न सही कल मेरे सत्कर्म का फल मिलेगा। पर यदि किसी को ईश्वर पर आस्था न हुई, कर्मफल के बारे में संदेह रहा तो फिर सत्कर्म के लिए कष्ट उठाना या त्याग करना निश्चय ही कठिन हो जाएगा।

सत्कर्म का तुरंत ही वैसा लाभ नहीं मिलता जैसा कुकर्म का। इसीलिए लोग सन्मार्ग छोड़कर कुमार्ग पर चलने को तत्पर होते हैं। इस कठिनाई के रहते हुए भी कोई व्यक्ति यदि कुकर्मों का लोभ छोड़कर सत्कर्म से होने वाले स्वल्प लाभ पर संतोष करता है तो उसे पुण्य-परमार्थ का, ईश्वरीय प्रसन्नता का एवं समयानुसार सत्परिणाम प्राप्त होने का विश्वास अवश्य होना चाहिए। इस विश्वास के अभाव में मनुष्य भटक जाता है और बिना पतवार की नाव की तरह उसका मन न सोचने योग्य सोचने में और न करने योग्य

करने में अग्रसर हो चलता है। ईश्वरीय विश्वास के अभाव में मन की दुष्प्रवृत्तियों पर अंकुश और किस प्रकार लगाया जाना संभव है, इसका और कोई सुनिश्चित विकल्प अभी तक किसी की समझ में नहीं आया है।

पापी के सामाजिक बहिष्कार एवं सार्वजनिक निंदा की एक प्रथा प्राचीनकाल में सबल थी और उस कारण से किसी कदर लोग बुराई से बचते थे, अब वह बंधन भी टूट चले। कहीं हैं भी, तो वे रोटी-बेटी की रूढ़ियों तक सीमित हैं। झूठ बोलने वाले, बेईमानी करने वाले, अनीति बरतने वाले का सामाजिक बहिष्कार होता अब कहीं दीखता नहीं। उलटे ऐसे लोगों से डरकर या लाभ उठाने का अवसर देखकर अनेक लोग उनके समर्थक बन जाते हैं। यही बात राजदंड के बारे में है। एक तो कानून ही बहुत थोड़ा सा दंड देते हैं। दूसरे पुलिस का इतना विस्तार भी नहीं कि छिपकर हुए दुष्कर्मों का भी पता प्राप्त कर सके। फिर दंड दिलाने के लिए जितना सबूत, जितने गवाह चाहिए, वह नहीं जुट पाते तो असंख्य लोग अपराधी होते हुए भी छूट जाते हैं। धन खरच कर सकने वालों के लिए तो इस प्रकार की छूट और भी सुलभ हो जाती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि सामाजिक बहिष्कार एवं राजदंड की पद्धतियाँ कुकर्मों को रोकने तक में सफल नहीं हो पा रही हैं तो कुविचारों के उठने की गुप्त मनोभूमि की गहराई तक तो उनका प्रवेश हो सकना और भी कठिन है। लोकनिंदा और राजदंड की उपेक्षा का भाव यदि मन में जम जाए तो मनुष्य और भी ढीठ एवं उच्छृंखल हो जाता है। आज ऐसी ही ढिठाई एवं उच्छृंखलता तेजी से बढ़ती चली जा रही है।

समाजनिष्ठा, देशभक्ति या आदर्शवाद के नाम पर एक और भी प्रयोग इस शताब्दी में ऐसा हो रहा है, जिसमें ईश्वर की उपेक्षा

करके इन आधारों पर मनुष्य को सदाचारी एवं आत्मसम्मान युक्त बनाने का परीक्षण किया गया है। साम्यवादी विचारधारा इसी की पोषक है। रूस आदि साम्यवादी देशों में इसका प्रयोग पिछले पचास वर्षों से चल रहा है। उस पर सूक्ष्म दृष्टि डालने पर स्पष्ट हो जाता है कि वह प्रयोग एक प्रकार से असफल ही रहा है। देशभक्ति एवं समाजनिष्ठा का भरपूर शिक्षण देने पर भी वहाँ अपराधों की संख्या आस्तिक देशों से भी कहीं अधिक है। इन देशों में जितना उत्पीड़न और रक्तपात जनता की दुष्प्रवृत्तियों को रोकने के लिए किया गया है, वह लोमहर्षक है। इतने दमन और नियंत्रण की परिस्थितियों ने आतंक तो पैदा कर दिया है, जिसके भय से निर्धारित प्रतिबंधों के विरुद्ध कोई सिर न उठावे। पर हृदय-परिवर्तन नहीं हुआ है। भीतर ही भीतर अनैतिकता की वह आग मौजूद है और समय-समय पर उसकी चिनगारियाँ सामने आती रहती हैं। रूस के शीर्षस्थ नेताओं को आएदिन देशद्रोही ठहरा कर मौत के घाट उतारा जाता रहता है। एक दिन के देशभक्त दूसरे ही दिन देशद्रोही घोषित कर दिए जाते हैं। इस प्रक्रिया के शिकार जितने बहुसंख्यक शीर्षस्थ नेता रूस में हुए उसे देखते हुए सोचना पड़ता है कि जब इन ऊँचे कहे जाने वाले लोगों का यह हाल है तो साधारण या निम्न वर्ग का क्या हाल होगा? जर्मनी, इटली, स्पेन आदि देशों में अधिनायकवाद का भी परीक्षण करके देख लिया है, बुरे कहे जाने वाले लोगों को दमन के बल पर कुचल डालने से लोग अच्छे रास्ते पर चलेंगे, इसका भयानक परीक्षण हुआ है, पर जनता कितनी सुधरी, यह तो पीछे खोजा जाएगा, पहले यही देख लिया जाए कि इस विचारधारा के शीर्षस्थ लोग ही परस्पर कितने विश्वासघाती और निष्ठुर सिद्ध हुए और इन सत्ताधारियों ने आपस में ही एकदूसरे से कितनी प्रतिद्वंद्विता,

ईर्ष्या, विश्वासघात एवं निष्ठुरता की नीति बरती। शीर्षस्थ स्तर पर जो परीक्षण असफल रहा है, वह सामान्य स्तर की जनता में सफल होगा, ऐसी आशा करना दुराशा मात्र ही कहा जाएगा।

सामूहिक भर्त्सना, राजदंड और समाजनिष्ठा यह तीनों ही बातें अच्छी हैं और इन तीनों की उपयोगिता भी है, पर मनुष्य के आंतरिक स्तर को सद्‌विचारों में ओत-प्रोत रखने एवं सत्कर्मों के लिए कुछ भी कष्ट उठाने की सुदृढ़ प्रेरणा इनमें नहीं है। वह तो ईश्वर निष्ठा में ही है। उपर्युक्त तीन दृष्टिकोण उपयोगिता-अनुपयोगिता की कसौटी पर नैतिक मूल्यों को बदल लेते हैं। इसलिए मनुष्य सोचता है कि सदाचार तो एक साधारण सा नीति नियम मात्र है, उसे आवश्यकतानुसार तोड़ा भी जा सकता है। मांसाहार को ही लीजिए—भौतिक दृष्टि रखने वाले लोग आर्थिक या अन्य उपयोगिताओं के कारण उसे सहर्ष स्वीकार कर लेते हैं और निरपराध प्राणी को मर्मांतक कष्ट देकर उसका प्राणाघात करने में संकोच नहीं करते। जब एक अवसर पर यह मान लिया गया कि अपने लाभ के लिए दूसरे के प्राणाघात करने में कुछ हर्ज नहीं तो यह नीति दूसरे अवसर पर मनुष्यों के प्रति भी व्यवहार में लाई जा सकती है। प्रश्न हत्या में पाप होने का न रहा, उपयोगिता की न्यूनाधिकता का रह गया, जिसे भिन्न-भिन्न व्यक्ति अपनी कसौटी पर अलग-अलग ढंग से भी कस सकते हैं और कोई अतिवादी चिड़ियों का शिकार खेलने की तरह मनुष्यों का भी शिकार खेलकर अपना मनोरंजन कर सकता है। कानपुर में एक कनपटीमार बाबा लोहे की कील से सड़क पर सोते हुए कितने ही निरीह मजदूरों को मौत के घाट उतार कर अपना मनोरंजन कर भी चुका है। यह उपयोगितावाद की विचारधारा मनुष्य को

अवसरवादी ही बना सकती है, आदर्शवादी नहीं। जब तक आदर्शवाद में सुदृढ़ निष्ठा न होगी, तब तक मनुष्य अपने लाभ और लोभ को त्यागकर देर तक परमार्थवादी न बना रह सकेगा। स्वार्थ और परमार्थ के संघर्ष में ऐसे लोग देर तक पुण्य-पथ पर सुदृढ़ नहीं रह सकते।

इन सब बातों पर विचार करते हुए ईश्वर विश्वास ही एकमात्र वह उपाय रह जाता है जो सत्प्रवृत्तियों को किसी नीति के रूप में नहीं, वरन मानव जीवन की मूलभूत आधारशिला मानकर हृदयंगम करने के लिए प्रेरणा दे सकता है। धर्म और कर्त्तव्यपालन आस्तिकता की दो भुजाएँ हैं। सच्चे ईश्वर विश्वासी के लिए यह आवश्यक है कि वह अपनी धर्मशीलता और कर्त्तव्यपरायणता के आधार पर परमात्मा को प्रसन्न करे। सब प्राणियों में परमात्मा की ज्योति देखे और सबके साथ शिष्टता, सज्जनता और सहृदयता का व्यवहार करे। पाप का दंड मिलने और पुण्य का पुरस्कार प्राप्त होने की मान्यता उसके धैर्य को कायम रख सकती है। इस उलटी दुनिया में सन्मार्ग पर चलते हुए कुछ कष्ट भी उठाना पड़े तो परलोक या अगले जन्म में न्याय मिल जाने की आशा भी उसे कठिन अवसरों पर विचलित होने से रोके रह सकती है।

आस्तिकता के आध्यात्मिक लाभ असंख्य हैं। स्वर्ग और मुक्ति का प्राप्त होना, भव-बंधनों से छूटना, जीवन मुक्ति का आनंद लेना, ऋद्धि-सिद्धियों की उपलब्धि, ईश्वर की कृपा से कष्टों से छुटकारा, आत्मबल की वृद्धि आदि अगणित लाभ आस्तिकता एवं उपासना से संबंधित हैं। पर सामाजिक एवं लौकिक दृष्टि से आस्तिकता का सबसे बड़ा लाभ यह है कि वह मनुष्य को कुकर्म करने से ही नहीं, कुविचार से भी दूर रहने की प्रेरणा देती है। आत्मनियंत्रण का यही उपाय ऐसा है जो हमारे नैतिक मूल्यों की

प्रतिष्ठा को जनमानस में गहराई तक जमाए रह सकता है। अपने सुधार और दूसरों के साथ सद्व्यवहार की जिस प्रक्रिया के ऊपर विश्वशांति की संभावना निर्भर है उसके लिए आस्तिकता ही एक प्रेरक शक्ति का केंद्र बन सकती है। जीव लघु से महान बने, अणु से विभु के रूप में विकसित हो, आत्मा को परमात्मा के रूप में परिणत करे यह आकांक्षा आस्तिकता के आधार पर ही तो जाग्रत होगी और इस आकांक्षा की पूर्ति के लिए उसे धर्मनिष्ठा, आत्मसंयम, परोपकार एवं सदाचार का अनिवार्यतः अवलंबन करना पड़ेगा। यही वह मार्ग हो सकता है, जो हमारी वैयक्तिक एवं सामाजिक दुरवस्था का समाधान करके वह परिस्थिति उत्पन्न करे, जिसमें सब लोग सुखपूर्वक रह सकें और विश्वव्यापी शांति का सुखद आनंद अनुभव कर सकें।

हम ईश्वर से विमुख न हों

जिंदगी को ठीक तरह जीने के लिए एक ऐसे साथी की आवश्यकता रहती है जो पूरे रास्ते हमारे साथ रहे, रास्ता बतावे, प्यार करे, सलाह दे और सहायता की शक्ति तथा भावना दोनों से ही संपन्न हो। ऐसा साथी मिल जाने पर जिंदगी की लंबी मंजिल बड़ी हँसी-खुशी और सुविधा के साथ पूरी हो जाती है। अकेले चलने में यह लंबा रास्ता भारी हो जाता है और कठिन प्रतीत होता है।

ऐसा सबसे उपयुक्त साथी जो निरंतर मित्र, सखा, सेवक, गुरु, सहायक की तरह हर घड़ी प्रस्तुत रहे और बदले में कुछ भी प्रत्युपकार न माँगे, केवल एक ईश्वर को जीवन का सहचर बना लेने से मंजिल इतनी मंगलमय हो जाती है कि धरती ही ईश्वर के लोक-स्वर्ग जैसी आनंदयुक्त प्रतीत होने लगती है। यों ईश्वर सबके

साथ है और वह सबकी सहायता भी करता है, पर जो उसे समझते और देखते हैं, वास्तविक लाभ उन्हें ही मिल पाता है। किसी के घर में सोना गड़ा है और उसे वह प्रतीत न हो तो गरीबी ही अनुभव होती रहेगी, किंतु यदि मालूम हो कि हमारे घर में इतना सोना है तो उसका भले ही उपयोग न किया जाए मन में अमीरी का गर्व और विश्वास बना रहेगा। ईश्वर को भूले रहने पर हमें अकेलापन प्रतीत होता है, पर जब उसे अपने रोम-रोम में समाया हुआ, अजस्र प्रेम और सहयोग बरसाता हुआ अनुभव करते हैं तो साहस हजारों गुना अधिक हो जाता है। आशा और विश्वास से हृदय हर घड़ी भरा रहता है।

जिसने ईश्वर को भुला रखा है, अपने बलबूते पर ही सब कुछ करता है और सोचता है उसे जिंदगी बहुत भारी प्रतीत होती है, इतना वजन उठाकर चलने में उसके पैर लड़खड़ाने लगते हैं। कठिनाइयाँ और आपत्तियाँ सामने आने पर भय और आशंका से कलेजा धक-धक करने लगता है। अपने साधनों में कमी दीखने पर भविष्य अंधकारमय प्रतीत होने लगता है। पर जिसे ईश्वर पर विश्वास है, वह सदा यही अनुभव करेगा कि कोई बड़ी शक्ति मेरे साथ है। जहाँ अपना बल थकेगा, वहाँ उसका बल मिलेगा। जहाँ अपने साधन कम पड़ रहे होंगे वहाँ उसके साधन उपलब्ध होंगे। इस संसार में क्षण-क्षण पर प्राणघातक संकट और आपत्तियों के पर्वत मौजूद हैं, जो उनसे अब तक अपनी रक्षा करता रहा है, वह आगे क्यों न करेगा?

अब तक के जीवन पर यदि हम ध्यान दें तो ऐसे ढेरों प्रसंग याद आ जाएँगे, जब चारों ओर अंधेरा छाया हुआ था और यह प्रतीत होता था कि नाव अब डूबी तब डूबी। पर स्थिति बदलीं, विपत्ति-घटाएँ हटीं और सुरक्षा के साधन बन गए। लोग इसे

आकस्मिक अवसर कहकर ईश्वर के प्रति अपनी आस्था को भुलाते रहते हैं। वास्तविकता यह है कि समय-समय पर हमें दैवी सहायता मिलती है और अपने स्वल्प-साधन रहते हुए भी कोई बड़ी शक्ति सहायता करने के लिए आ पहुँचती है। कृतघ्नता को हमने अपने स्वभाव में यदि सम्मिलित नहीं किया है तो अपने निज के जीवन में ही अगणित अवसर दैवी सहायता के ढूँढ़ सकते हैं और यह विश्वास कर सकते हैं कि उसकी अहैतुकी कृपा निरंतर हमारे ऊपर बरसती रहती है।

अब तक जिसने समय-समय पर इतनी सहायता की है। जन्म लेने से पहले ही हर घड़ी गरम, मीठे और ताजे दूध से निरंतर भरे रहने वाले दो-दो डिब्बे जिसने तैयार करके रख दिए थे, माता के रूप में धोबिन, डॉक्टर, नर्स, आया तथा मनमाना खरच और दुलार करने वाली एक चौबीस घंटे की बिना वेतन की सेविका जिसने नियुक्त कर रखी थी, प्रत्येक अवसर पर जिसकी सहायता मिलती रही है, वह आगे भी मिलेगी ही और अपना भविष्य उज्ज्वल बनेगा ही; यह विश्वास करने वाला व्यक्ति कभी निराश नहीं हो सकता। उसकी हिम्मत कभी टूट नहीं सकती। आस्तिकता के आधार पर हमारी हिम्मत बढ़ती है और साहसी शूरवीरों जैसा कलेजा बना रहता है।

डरता वह है जिसे ईश्वर का डर नहीं होता। जो ईश्वर से डरता है, उसके आदेशों का उल्लंघन नहीं करता, उसे इस संसार में किसी से भी डरना नहीं पड़ता। संसार की हर वस्तु से डरने और सशंकित रहने का एक ही कारण है—ईश्वर से न डरना, उसकी अवज्ञा करना। जो ऐसा नहीं करते, उसे अपना मित्र, सहायक और मार्गदर्शक मानते हैं उन्हें सबसे पहला उपहार निर्भयता का प्राप्त होता है। उन्हें फिर किसी से भी डरना नहीं पड़ता, आपत्तियाँ उसे

खिलवाड़ दीखती हैं। वस्तुतः इस पुण्य-उपवन संसार में डरने का कहीं कोई कारण नहीं है। कागज का डरावना चेहरा पहनकर छोटे बच्चों को डराने का विनोद किया जाता है वैसा ही विनोद कठिनाइयाँ दिखाकर हमारे साथ किया जाता रहता है।

पिता अपने बच्चे को तलवार घुमाकर डराना चाहे तो क्या बच्चा कभी डरता है? ईश्वर के हाथ में इस संसार की सारी बागडोर है। दीखने वाली कठिनाइयाँ भले ही तलवार जैसी चमकें, उनके मूँठ तो अपने परम स्नेही के हाथ में हैं, फिर डरने की क्या बात रही? ईश्वर विश्वासी का सोचना इसी ढंग का होता है। हर डराने वाली घटना उसे खिलवाड़ जैसी लगती है और विषम घड़ियों में भी न तो उसे घबराहट होती है और न परेशानी।

अपना सहायक, पिता-माता, स्वामी, सखा, भ्राता, मित्र, परिजन और धन जिसने ईश्वर को मान रखा है, उसे किसी बड़े से बड़े अमीर से, राजाधिराज से भी अधिक आत्मविश्वास बना रहेगा। राजा-रईसों के लड़के अपने पिता की जरा सी शक्ति और संपत्ति पर गर्व कर सकते हैं तो अनंत सामर्थ्यों और असीम विभूतियों के स्वामी ईश्वर को जो अपना पिता मानेगा, उसे इस संसार में फैला हुआ सब कुछ अपने दाता का ही अनुभव होगा। इतना अतुल वैभव जब अपना—अपने पिता का ही है तब दरिद्रता और गरीबी की बात सोचने का प्रश्न ही नहीं उठता। गरीब वे हैं जो केवल अपनी ही संपत्ति को अपनी मानते हैं। ईश्वर को अपने से पृथक, दूर एवं असंबद्ध मानने वाले को ही गरीबी दुःख देती है और उसे ही तृष्णा सताती है तो फिर असंतोष किस चीज का, कमी किस बात की!

गाड़ी दो पहिये से चलती है। अपनी गाड़ी में एक पहिया अपना और एक ईश्वर का लगा लें तो जो गति आती है वह एक

पहिये से नहीं आ सकती। ईश्वरविहीन जीवन ऐसा ही है जैसा बिना शरीर के प्रेत-पिशाच की योनि में विचरण करने वाला आत्मा। उसे अशांति ही मिलती है, असंतोष, द्वेष, क्लेश से ही ऐसी मनोभूमि जलती और संत्रस्त रहती है। परमात्मा से विमुख होकर हम पाते कुछ नहीं, खोते बहुत हैं। समय रहते इस भूल को सुधार लिया जाए तो ही अच्छा है।

यह सृष्टि ही परमात्मामय है

जिस प्रकार कोई भी कलाकृति अपने निर्माता के अस्तित्व तथा व्यक्तित्व को प्रकट करती है, उसी प्रकार यह सृष्टि अपने रचयिता अपने शिल्पी परमात्मा को व्यक्त करती है। जिसका निर्माण हुआ है उसका निर्माता अवश्य है—इसमें किसी प्रकार की शंका अथवा तर्क को कोई अवसर नहीं है।

यह समस्त सृष्टि एक सुनिश्चित रचना है। इस रचना का अणु-अणु एक निश्चित नियमावली से अनुशासित है, नियंत्रित है। हजारों प्रकार की वनस्पतियाँ और लाखों प्रकार के प्राणी अपने-अपने नियमानुसार बनते और बिगड़ते रहते हैं। पर क्या मजाल कि उसकी रचना में तनिक सी निंदा अथवा गड़बड़ी हो जाए।

सूर्य समय पर निकलता, समय पर अस्त होता है। गुलाब के पौधे में गुलाब और गेंदे के पौधे में गेंदे के ही फूल खिलते हैं। आम के वृक्ष में आम और अमरूद के वृक्ष में अमरूद के ही फल लगते हैं। उसमें भी जिन वृक्षों से जिस प्रकार के फल अपेक्षित हैं उसी प्रकार के ही फल पैदा होंगे; एक रंग, एक आकार और एक स्वाद वाले। खट्टे वृक्षों में खट्टे और मीठे में मीठे फल ही उत्पन्न होंगे। निश्चित भूमि, निश्चित जलवायु और निश्चित ॠतु में ही वे उत्पन्न होंगे और निश्चित समय पर ही समाप्त होंगे।

एक जंगल में लाखों वनस्पतियाँ होती हैं। हजारों प्रकार के पेड़ एक के पास एक उत्पन्न होते हैं, किंतु उनकी एक भी पत्ती की बनावट में भूल नहीं होती। इमली से लेकर केले तक की पत्तियों का एक निश्चित आकार-प्रकार होता है। एक पेड़ की पत्ती संसार के किसी दूसरे पेड़ की पत्ती से नहीं मिलती। उनमें कोई न कोई किसी प्रकार का थोड़ा-बहुत अंतर अवश्य होगा। इतनी विविधता और इतने प्रकार जानने वाला वह कलाकार, वह शिल्पी, वह निर्माता कितना ज्ञानवान, कितना चैतन्य और कितना समर्थ होगा, इसका अनुमान लगाना कठिन है। विश्व की इतनी बड़ी रचना को देखकर और उसके संचालन की अविकार विधि देखकर ऐसा कौन अभागा होगा जो रचयिता के अस्तित्व में संदेह करेगा।

किसी भी वृक्ष का बीज देखिए। उसके स्तर-स्तर अलग कर डालिए। उसका रेशा-रेशा चीर डालिए; कहीं भी आपको वृक्ष का कोई आकार, उसकी कोई भी तसवीर, उसका कोई भी अस्तित्व दृष्टिगोचर न होगा। कितना विलक्षण है, कितना अद्‌भुत है कि जब वह धरती में बो दिया जाता है, तब उसमें विविध प्रकार के वृक्ष उत्पन्न हो उठते हैं। बीज मिट्‌टी में मिलकर वृक्ष को जन्म देता है। जब वृक्ष अस्तित्व में आता है, तब बीज मिट चुका होता है। किंतु पुनरपि वह वृक्षों द्वारा उत्पन्न फलों में अपना अस्तित्व अपना स्वरूप प्राप्त कर लेता है। प्रकृति की यह प्रक्रिया कितनी विलक्षण, अद्‌भुत और विस्मयवर्द्धक है। ध्यानपूर्वक इसको देखने, विचार करने और मनन करने से इसके नियामक, निर्माता और पालनकर्त्ता का ध्यान आए बिना नहीं रहता। कैसा अखंड अनुशासन है कि एक ही मिट्‌टी से ईख मिठास, मिर्च कड़ुहाअट और करौंदा खटास प्राप्त करता है। मिट्‌टी को चखिए उसमें इस प्रकार का

कोई रस, कोई स्वाद आपको नहीं मिलेगा। इतने रस, इतने स्वाद और इतने गुण एक ही मिट्‌टी में कहाँ से आ जाते हैं? यह सारे रस, आकार-प्रकार, गुण आदि और कुछ नहीं, एक उसी परमात्मा शिल्पी का अपना व्यक्तित्व अपना कर्तृत्व है। वह स्वयं धरती है, स्वयं मिट्‌टी है, स्वयं बीज, वृक्ष और फल है। वह ही स्वयं रस, स्वाद और गुण भी है।

संसार में लाखों पशु-पक्षी और जीव-जंतु मौजूद हैं। सब एक-दूसरे से भिन्न। आकार-प्रकार, बनावट-स्वभाव विचित्र। जितने प्रकार के पक्षी उतने प्रकार के रंग, उतनी प्रकार की बोलियाँ और उतने ही प्रकार के गुण व स्वभाव। इन सब बातों में इतनी असीमता और अपरिमितता एक उसी विराट की याद दिलाती है।

रात-दिन, प्रकाश-अंधकार, गरमी-सरदी, जल-थल आदि सब उसी की साक्षी देते हैं, उसी के अस्तित्व को प्रकट करते हैं। अग्नि जलाती है, पानी बुझाता है, वायु कंपित करती है, जीवन जिलाता है और मृत्यु मारती है। किसके आदेश से, किसके संकेत से? एक उसी बिंदु की इंगित मात्र से यह सारे कार्य-कलाप होते हैं, सारी प्रक्रियाएँ चलती हैं। बिना उसके संकेत के एक पत्ती भी नहीं हिल सकती, एक श्वास का भी आवागमन नहीं हो सकता।

इतनी बड़ी रचना, इतनी महानं कृति को उसने किस उद्‌देश्य, किस हेतु से, किसके लिए निर्मित किया है? यह एक गहन प्रश्न है। एक गूढ़ रहस्य है? मनीषियों का मत है कि यह सब एक उस ही परमात्मा ने अपने से, अपने में, अपने लिए ही उत्पन्न किया है।

सृष्टि में हर ओर से ओत-प्रोत परमात्मा और परमात्मा में हर प्रकार से समाहित यह संपूर्ण रचना, मनुष्य के समझने के लिए है। समझकर उस रचयिता का ज्ञान प्राप्त कर आनंद पाने के लिए है।

सृष्टि के प्रत्येक प्रत्यक्ष पदार्थ में जो अप्रत्यक्ष निराकार विस्मय है, विलक्षणता है, कुतूहल है वही परमात्मा की एक झलक है। जिसके सहारे मनुष्य उस चिदानंद परमात्मा तक पहुँचता है। अपना हृदय विशाल कीजिए। अपनी दृष्टि निर्मल कीजिए और देखिए, आपकी सृष्टि के प्रत्येक अणु में उस विराट बिंदु की झाँकी देखने को मिलेगी।

परमात्मा सत् + चित् + आनंद अर्थात सच्चिदानंद रूप है। उनका उद्देश्य प्राणीमात्र को आनंद प्रदान करना है। मनुष्य को छोड़कर संसार का हर प्राणी एक नैसर्गिक आनंद को प्राप्त करता है। एक मनुष्य ही ऐसा है जो स्वतः आनंदित नहीं दिखलाई देता। इसका स्पष्ट कारण यह है कि परमात्मा की इच्छा है कि वह उसके संपूर्ण स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करके आनंद की अनुभूति प्राप्त करे। अर्थात केवल आनंद नहीं वरन सच्चिदानंद परमात्मा की पूर्ण अनुभूति करे। सत्, चित् अर्थात उसके अस्तित्व का ज्ञान प्राप्त करके आनंद की अनुभूति प्राप्त करे। अन्य पशु-पक्षियों की भाँति मनुष्य परमात्मा का ज्ञान प्राप्त किए बिना आनंद को प्राप्त नहीं कर सकता। उसे सच्चा आनंद तब ही प्राप्त हो सकता है, जब वह परमात्मा का ज्ञान प्राप्त कर ले।

अपनी इच्छा के अनुरूप ही उसने मनुष्य को उपादान भी दिए हैं। अद्भुत शरीर और विलक्षण विवेक बुद्धि। इनका उपयोग कर मनुष्य सहज ही परमात्मा का ज्ञान प्राप्त कर सकता है। अपनी विवेक शक्ति को विकृतियों से मुक्त कर मनुष्य यदि प्रत्यक्ष संसार को एक गहरी अनुभूति से देखे, उस पर चिंतन करे तो सहज ही वह परमात्मा के अस्तित्व का ज्ञान प्राप्त कर सकता है।

मनुष्य को आनंद की खोज करने की आवश्यकता नहीं, वह तो सच्चिदानंद परमात्मा से उत्पन्न इस आनंद क्या, सृष्टि में स्वयं

ही ओत-प्रोत है। मनुष्य को केवल अपनी अनुभव शक्ति को प्रबुद्ध भर करना है। अनुभव शक्ति के प्रबोध के लिए उसे कोई विशेष तपस्या अथवा साधना नहीं करनी है। वह एक विस्मयमूलक दृष्टिकोण से उसकी रचना इस संसार को देखे और परम शिल्पी की परम रचना समझकर उसका सम्मान करे, इतना भर कर लेने से उसकी अनुभव शक्ति स्वतः प्रबुद्ध हो उठेगी और एक बार प्रबुद्ध हो जाने पर वह शक्ति पुनः निहित नहीं होगी।

स्त्री-पुरुष, पशु-पक्षी, पेड़-पौधे, फल-फूल जिसको भी देखें एक विस्मय और कुतूहल से देखता हुआ निर्माता की सराहना में गद्‌गद हृदय हुआ मनुष्य एक दिन बिना किसी विशेष साधन के परमानंद को अवश्य पा लेगा।

अपने सहित सृष्टि के बाहर सच्चिदानंद परमात्मा का अस्तित्व कल्पना करने वाले जन्म-जन्मांतर उसकी अनुभूति प्राप्त नहीं कर सकते। परमात्मा इस सृष्टि में ही है। सृष्टि में जो कुछ है, वह सब उसी का स्वरूप है, उसी का अस्तित्व है।

❒

हमारा सत्संकल्प

- हम ईश्वर को सर्वव्यापी, न्यायकारी मानकर उसके अनुशासन को अपने जीवन में उतारेंगे।
- शरीर को भगवान का मंदिर समझकर आत्मसंयम और नियमितता द्वारा आरोग्य की रक्षा करेंगे।
- मन को कुविचारों और दुर्भावनाओं से बचाए रखने के लिए स्वाध्याय एवं सत्संग की व्यवस्था रखे रहेंगे।
- इंद्रियसंयम, अर्थसंयम, समयसंयम और विचारसंयम का सतत अभ्यास करेंगे।
- अपने आपको समाज का एक अभिन्न अंग मानेंगे और सबके हित में अपना हित समझेंगे।
- मर्यादाओं को पालेंगे, वर्जनाओं से बचेंगे, नागरिक कर्त्तव्यों का पालन करेंगे और समाजनिष्ठ बने रहेंगे।
- समझदारी, ईमानदारी, जिम्मेदारी और बहादुरी को जीवन का एक अविच्छिन्न अंग मानेंगे।
- चारों ओर मधुरता, स्वच्छता, सादगी एवं सज्जनता का वातावरण उत्पन्न करेंगे।
- अनीति से प्राप्त सफलता की अपेक्षा नीति पर चलते हुए असफलता को शिरोधार्य करेंगे।
- मनुष्य के मूल्यांकन की कसौटी उसकी सफलताओं, योग्यताओं एवं विभूतियों को नहीं, उसके सद्विचारों और सत्कर्मों को मानेंगे।
- दूसरों के साथ वह व्यवहार नहीं करेंगे, जो हमें अपने लिए पसंद नहीं।
- नर-नारी के प्रति परस्पर पवित्र दृष्टि रखेंगे।
- संसार में सत्प्रवृत्तियों के पुण्य प्रसार के लिए अपने समय, प्रभाव, ज्ञान, पुरुषार्थ एवं धन का एक अंश नियमित रूप से लगाते रहेंगे।
- परंपराओं की तुलना में विवेक को महत्त्व देंगे।
- सज्जनों को संगठित करने, अनीति से लोहा लेने और नवसृजन की गतिविधियों में पूरी रुचि लेंगे।
- राष्ट्रीय एकता एवं समता के प्रति निष्ठावान रहेंगे। जाति, लिंग, भाषा, प्रांत, संप्रदाय आदि के कारण परस्पर कोई भेदभाव न बरतेंगे।
- मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता आप है—इस विश्वास के आधार पर हमारी मान्यता है कि हम उत्कृष्ट बनेंगे और दूसरों को श्रेष्ठ बनाएँगे, तो युग अवश्य बदलेगा।
- 'हम बदलेंगे-युग बदलेगा', 'हम सुधरेंगे-युग सुधरेगा' इस तथ्य पर हमारा परिपूर्ण विश्वास है।

मुद्रक—युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा (उ. प्र.)